यह एक पद्मनन्दि पञ्चविंशति नाम का शास्त्र है। अनेक शताब्दी पूर्व ये पद्मनन्दि आचार्य, जंगल में वनवासी थे, उन्होंने ये अधिकार बनाये छब्बीस, इसका नाम पच्चीस दिया है। अधिकार छब्बीस हैं। उनमें यह छठवाँ अधिकार है — श्रावकाचार अथवा उपासक संस्कार। श्रावक के आचार कैसे हों अर्थात् उसे उपासकरूप से संस्कार अन्दर पर्याय में कैसे हों — उसका यह वर्णन किया है। पहली बात याद की तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव प्रभु और श्रेयांसकुमार। जो इस भरतक्षेत्र में व्रत और दानतीर्थ में प्रथम थे। उन्हें याद करके यह अधिकार शुरु करते हैं।

श्लोक - १

आद्यो जिनो नृपःश्रेयान् व्रतदानादिपुरुषौ।
एतदन्योऽन्यसंबन्धे धर्मस्थितिरभूदिह ॥१ ॥

अर्थ : आदि जिनेन्द्र श्री ऋषभनाथ और श्रेयांस नामक राजा, ये दोनों महात्मा व्रततीर्थ तथा दानतीर्थ के प्रवर्ताने में आदि पुरुष हैं और इस भरतक्षेत्र में इन दोनों के सम्बन्ध से ही धर्म की स्थिति हुई है॥१ ॥

श्लोक १ पर प्रवचन

आदि जिनेन्द्र... देखो! पद्मनन्दि आचार्य भी मंगलाचरण में, पंचमकाल के भाव(लिंगी) सन्त-मुनि हैं, वे भी श्रावक के संस्कार का वर्णन करते हुए — श्रावक का भाव कैसा हो, यह बतलाते हुए, पहले तीर्थंकर की स्तुति को याद करते हैं। **आदि जिनेन्द्र श्री ऋषभनाथ और श्रेयांस नामक राजा, ये दोनों महात्मा....** दोनों महात्मा, दोनों को महात्मा कहा। **व्रततीर्थ तथा दानतीर्थ के प्रवर्ताने में आदि पुरुष हैं....** इस धर्म में जरा दान चाहिए **और इस भरतक्षेत्र में इन दोनों के सम्बन्ध से ही धर्म की स्थिति हुई है।** क्या कहते हैं ?

ऋषभदेव भगवान इस चौबीसी में प्रथम मुनि हुए। आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मा का चारित्र — इनकी एकतारूप से मोक्षमार्ग की प्रथम दशा / चारित्र की, उन्होंने प्रथम इस चौबीसी में पहली ग्रहण की; इसलिए व्रत के आदरनेवालों में आदि तीर्थंकर पहले हैं और इन भगवान को बारह महीने में आहार मिला। छह महीने के तो उपवास किये थे और छह महीने भिक्षा के लिये गये थे, परन्तु मुनि को किस विधि से (आहार) देना, यह विधि लोक को पता नहीं थी। भगवान ने कही नहीं थी, इससे छह महीने तक उन्हें दान नहीं मिला।

मुमुक्षु : .....

उत्तर : छह महीने (नहीं मिला)। वे तो छद्मस्थ हैं, मुनि तो ध्यान में रहते हैं। भिक्षा

के लिये जाते थे, चार ज्ञान के धनी थे। चार ज्ञान में कोई उपयोग लगाये कि इस समय मुझे आहार मिलेगा या नहीं मिलेगा? इसके लिये कहीं चार ज्ञान प्रगट हुए हैं? समझ में आया?

भगवान को दीक्षा ग्रहण करते समय चार ज्ञान हुए। इससे पहले तीन ज्ञान तो लेकर माता के उदर में आये थे, परन्तु कहीं उपयोग इसके लिये है? एक ऐसी प्रगट दशा हो गयी है, वह हुई है। अपने संयम के इस चार प्रकार की विधि में जो मुनि को आहार लेने की वृत्ति हुई; जाते हैं, मिलता नहीं, वापस मुड़ते हैं। इसमें कोई तर्क करे कि इन चार ज्ञान के धनी को ऐसा कैसे? भाई! वे साधकजीव अपने स्वभाव को साधने की क्रीड़ा में पड़े होते हैं। यह कोई अवधि (ज्ञान) की, मन:पर्यय (ज्ञान) की लब्धि हुई हो, उसे देखने को कहीं फुर्सत में नहीं है। वे स्वरूप के साधन में पड़े हैं।

छह महीने तक आहार नहीं मिला, अर्थात् कि बारह महीने तक आहार (नहीं मिला)। छह महीने के उपवास और छह महीने तक इस प्रकार का आहार का विरह पड़ा, संयोग नहीं मिला। सहज ही मिलने का नहीं था, हों! वह नहीं समझाया था, इसलिए नहीं — ये सब बातें व्यवहार से की जाती हैं। उन भगवान को श्रेयांसकुमार ने आहार दिया। उसे स्वप्न आया कि अरे...! भरतक्षेत्र में कल्पवृक्ष सूखते हैं। यह श्रेयांसकुमार भी मोक्षागमी है, इस भव में मोक्षगामी है और ये भगवान भी मोक्षगामी हैं। दोनों चरमशरीरी हैं, जिन्हें अन्तिम शरीर है।

ऐसा स्वप्न आया। दो भाई हैं, उनमें ये श्रेयांस छोटे भाई हैं। उन्हें स्वप्न आया कि ओहो..! कल्पवृक्ष सूखते हैं। किसी निमित्तज्ञानी को पूछा — यह क्या (होता है)? आपके घर में कोई महामुनि पधारनेवाले हैं। यह कल्पवृक्ष सूखते हैं। भगवान ऋषभदेव को बारह महीने से आहार का योग होता नहीं, आज वे पधारें तो ना नहीं। ऐसे जहाँ स्वयं श्रेयांसकुमार और बड़े भाई दोनों आते हैं, बहुत ही विनय से जाते हैं, भगवान के दर्शन करते हैं। भगवान तो मौन हैं, आहार की विधि किस प्रकार करना? (- इसका) पता नहीं था। ऐसे भगवान को देखा, (वहाँ) जातिस्मरण हुआ। आठवें भव में मैं इनकी स्त्री था, भगवान का आत्मा मेरा पति था। हम दोनों जनों ने आठवें भव में मुनि को इस विधि से आहार दिया था। वह विधि जातिस्मरण में (आयी)। राजकुमार, सोने की मणिरत्न की पुतली देख लो!

ऐसे तो पुण्यवन्त हैं। चरमशरीर है, दो भाई हैं, उन्हें प्रेम, वह भी अजोड़ प्रेम है। छोटा भाई ऐसे बुलावे तो बड़े को ऐसा हो कि आहाहा...! धन्य-धन्य! मेरे घर में, मेरे आँगन में कल्पवृक्ष आया और सफल हुआ। ऐसे दोनों भाईयों को अनुमोदन (आता है), परन्तु इनके संस्कार थे और इनको आहार देने की वृत्ति हुई, जातिस्मरण हुआ। अहो..! आठवें भव में हमने मुनि को इस अमुक विधि से आहार कराया था। भान हुआ।

पधारो प्रभु! आँगन में आये हैं, घर में गन्ने का रस आया है, राजा है न? शेरड़ी समझते हैं? गन्ना। उसका रस आया है, सहज आया है, कुछ बनाया (नहीं)। अभी तो वर्षीतप में नकल करते हैं, एक दिन खाना और एक दिन उपवास — यह श्वेताम्बर में चलता है और बारह महीने बाद उसे गन्ने का रस, १०८ इतना लोटा (छोटा लोटा) दे। भाई! भगवान को एक सौ आठ घड़ा (दिया), वह होगा या नहीं? गन्ने का रस दिया। भगवान हाथ में रस (लेते हैं)। बारह महीने में। अहो...! दान, महादान! देवों ने जिनके दान की प्रशंसा की। फूल की तरह ऐसे वर्षा बरसी, परमाणु रत्न होकर, परमाणु के स्कन्ध रत्न होकर बरसे। जिनके घर के आँगन में रत्न बरसे और देवों ने धन्य दान...! धन्य दान...! अहो दान...! ऐसे जिनकी प्रशंसा की और दोनों भाई आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... ओहोहो!

इस चौबीसी में हमारे यहाँ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का पहला पारणा (हुआ)। सफल हमारा अवतार! सम्यग्दृष्टि हैं, ज्ञानी हैं। समझ में आया? तो भी ऐसा प्रमोदभाव (आता है)। ऐसे परमात्मा साक्षात् केवलज्ञान नहीं पाये, परन्तु लेनेवाले हैं; प्रमोद से (कहते हैं) प्रभु! धन्य अवतार हमारा! हमारे आँगन में कल्पवृक्ष आकर सफल किया! हमारे जीवन की आज सफल कोई घड़ी है... ऐसे दोनों भाई आनन्द में, आनन्द में (आ जाते हैं)। है विकल्प, परन्तु प्रमोद एवं वात्सल्यभाव इतना उछला है।

आचार्य कहते हैं कि मैं दोनों को याद करता हूँ। ओहो! जिन्होंने व्रततीर्थ शुरु किया, अर्थात् अन्तर में दर्शन-ज्ञान और चारित्र की दशा प्राप्त की और पंच महाव्रत का व्यवहार विकल्प भी जिन्हें — भगवान को था तथा श्रेयांसकुमार ने उन्हें दान दिया। कहते हैं **चतुर्थकाल की आदि में जिस समय कर्मभूमि की प्रवृत्ति थी, उस समय सबसे पहले**

व्रततीर्थ की प्रवृत्ति श्री आदिश्वर भगवान ने की है.... भगवान त्रिलोकनाथ ने पहले चारित्र अंगीकार किया। इस कर्मभूमि की **प्रथम ही प्रथम इन्होंने ही तप आदि को धारण किया है...** तप अर्थात् मुनि। **उसी काल में दानतीर्थ की प्रवृत्ति श्री श्रेयांस राजा ने की है अर्थात् सबसे पहले श्री आदिश्वर भगवान को श्रेयांस राजा ने ही दान दिया है....** इस चौबीसी में पहले वहाँ से शुरु हुआ। व्रत-चारित्रधर्म और व्रत व्यवहार तथा यह दानधर्म। यह व्यवहार दानधर्म की बात चलती है न?

इसलिए ये दोनों महात्मा व्रततीर्थ तथा दानतीर्थ के प्रवर्ताने में आदि पुरुष हैं.... इस श्रावक के संस्कार में श्रावकों का क्या-क्या आचार है - इसका वर्णन करते हुए, मैं दोनों महात्माओं का स्मरण करता हूँ। **इन दोनों के सम्बन्ध से ही इस भरतक्षेत्र में धर्म की स्थिति हुई है।** धर्म की स्थिति, धर्म के स्तम्भ उस समय रोपे गये, कहते हैं। एक ओर चारित्रव्रत धर्म तथा एक ओर दानधर्म। दान का अधिकार है, उसमें भी, भाई! यह पहले लिया। इसमें पहले दान का अधिकार है न? अपने पढ़ा न? भाई! (संवत्) २०१५ की साल में दोपहर को। मुम्बई (पढ़ा था)। उसमें भी दान के लिये पहली ही यह शैली की है कि इन ऋषभदेव भगवान और इन श्रेयांसकुमार — दोनों को मैं यह दान अधिकार शुरु करते हुए याद करता हूँ। यह भी मंगलाचरण में पहला महान मांगलिक है।

श्लोक - २

अब आचार्य धर्म के स्वरूप का वर्णन करते हैं। देखो! श्रावक के संस्कार बतलाने से पहले, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होना चाहिए। उसे आंशिक चारित्र होना चाहिए। सम्यग्दर्शन और ज्ञान के बिना श्रावक-आचार नहीं होते। उपासक के संस्कार, सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना नहीं होते। यद्यपि पहले अधिकार में पूर्व में भी यह आया है कि एक सम्यग्दर्शन होवे तो वह पुरुष प्रशंसनीय है। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो तदुपरान्त श्रावक के व्रत और आचरण के पंचम गुणस्थान का वर्णन किया है।

सम्यग्दग्बोधचारित्रत्रितयं धर्म उच्यते।
मुक्तेः पन्था स एव स्यात्प्रमाणपरिनिष्ठितः ॥२॥

अर्थ : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को धर्म कहते हैं तथा प्रमाण से निश्चित यह धर्म ही मोक्ष का मार्ग है॥२॥

श्लोक २ पर प्रवचन

सम्यग्दर्शन,.... यह जो अपने चलता है, वह। भगवान आत्मा निर्विकल्प वस्तु है — ऐसी अन्तर में भान में प्रतीति (होना), उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसके बिना श्रावकपना नहीं हो सकता। यह निश्चयसम्यग्दर्शन की बात है। बहुत से ऐसा कहते हैं कि भाई! वह (बहुत) चला है, चौथे से बारहवें तक व्यवहार समकित है और तेरहवें (गुणस्थान में) निश्चय है, और बहुत उल्टा फिर गया है। समझ में आया? यह सब समयसार की बात है, वह सब ऊँची-ऊँची केवली के लिये है, ऐसी बात (करते हैं)। मस्तिष्क घूम जाए (- ऐसा कहते हैं)। क्योंकि भेद है न? मस्तिष्क का भेद है। जहाँ यह समतुल मस्तिष्क नहीं, वहाँ आगे यह बात जमती नहीं। मोक्षमार्ग भी दो है, एक नहीं - ऐसा कहते हैं। मेरी पहली श्रद्धा थी, वह सच्ची थी, यह बीच में गड़बड़ हो गयी... वस्तुस्थिति बदल जाती है न, एकदम बदल गयी। वह था ही, वेग में ही था सब। समझ में आया?

यह सम्यग्दर्शन जो कहा, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। चौथे और पाँचवें गुणस्थानवाले श्रावक को भी सम्यग्दर्शन निश्चय होता है। निश्चय अर्थात् स्व-आश्रय पर्याय की निर्विकल्प प्रतीति प्रगट होना, उसे निश्चय कहते हैं और वह सम्यग्दर्शन होने पर भी, पूर्णता पाकर सिद्ध में रहे तो यह सम्यग्दर्शन रहता है। समझ में आया? व्यवहार सम्यग्दर्शन कहीं वहाँ नहीं रहता। यह तो बहुत अधिकार लिया, परन्तु वे कहते हैं — यह नहीं, टोडरमल भी नहीं। अब सबको उड़ाते हैं। कहे - टोडरमल ऐसा कहते हैं, तो कहे - नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन.... यह श्रावक की बात चलती है। गृहस्थदशा में स्त्री, पुत्र, परिवार में

रहने पर भी... समझ में आया? उसे आत्मा का (सम्यग्दर्शन होता है।) यहाँ समुच्चय पहली बात (की) है, फिर उसके दो भाग करेंगे। **सम्यग्दर्शन...** सच्चा सत् स्वरूप का भान अन्तर में प्रतीत होना। **सम्यग्ज्ञान,....** आत्मा का, सम्यग्ज्ञान का, ज्ञान से श्रुत का — भावश्रुत का वेदन होना। **सम्यक्चारित्र...** इन पूर्वक स्वरूप में अन्तर रमणता, लीनता, शान्ति और आनन्द की जमावट जमना, इसे सम्यक्चारित्र कहते हैं। **इन तीनों के समुदाय को धर्म कहते हैं.... 'त्रितयं धर्म उच्यते'** तीनों को धर्म कहते हैं। तीनों के समुदाय को धर्म कहते हैं। एक-एक को भी, सम्यग्दर्शन धर्म, सम्यग्ज्ञान धर्म, सम्यक्चारित्र धर्म (कहते हैं)। यह निश्चय की बात है।

तथा प्रमाण से निश्चित यह धर्म ही मोक्ष का मार्ग है। देखो! **'स्यात्प्रमाणपरिनिष्ठितः'** यह प्रमाण से सिद्ध हुई बात है कि **निश्चित यह धर्म ही...** मोक्ष का पन्थ है; दूसरा कोई मोक्ष का पन्थ है नहीं। प्रमाण से निश्चित हो गया है। सम्यग्ज्ञान से, केवलज्ञान से निश्चित हो गया है। भगवान आत्मा अनन्त गुण समाज धाम प्रभु, उसके अभेदस्वरूप के अन्तर में **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** एक स्वभावी वस्तु की अन्तर्मुख होकर प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें रमणता (होना), उसे भगवान, मोक्ष का पन्थ कहते हैं। कहो, यह मोक्ष का पन्थ है कि जिसके द्वारा मोक्ष हो जाए, पन्थ पूरा होने पर मोक्ष हो जाता है।

अब, आचार्य कहते हैं —

श्लोक - ३

रत्नत्रयात्मके मार्गे संचरन्ति न ये जनाः।
तेषां मोक्षपदं दूरं भवेद्दीर्घतरोभवः॥३॥

अर्थ : जो मनुष्य इस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग में गमन नहीं करते हैं, उनको कदापि मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती और उनके लिए संसार दीर्घतर हो जाता है, अर्थात् उनका संसार कभी भी नहीं छूटता॥३॥

श्लोक ३ पर प्रवचन

जो मनुष्य इस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग में गमन नहीं करते हैं,... मोक्षमार्ग में (अर्थात्) अन्तर में दर्शन-ज्ञानसहित की चारित्र की रमणता करते नहीं, **उनको कदापि मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती....** समझ में आया ? इस मार्ग के बिना कभी मोक्ष की प्राप्ति तीन काल-तीन लोक में किसी को होती नहीं। **और उनके लिए.... 'भवेद्दीर्घतरोभवः' संसार दीर्घतर हो जाता है, अर्थात् उनका संसार कभी भी नहीं छूटता।** इसका अर्थ यह **'भवेद्दीर्घतर' 'भवेद्दीर्घतरोभवः'** अर्थात् संसार उनका लम्बा है। मोक्ष नहीं, इसलिए उन्हें दीर्घतर संसार - बहुत लम्बा विकट है। जो इस पन्थ में — दर्शन-ज्ञान और चारित्र में नहीं आते उन्हें संसार का भटकना / परिभ्रमण अनन्त काल उन्हें पड़ा हुआ है। कहो, समझ में आया ? यह सामान्य व्याख्या की। यह तो स्वरूप है, ऐसा। अब यहाँ श्रावक का अधिकार लेना है। इसलिए दो भाग करते हैं।

श्लोक - ४

सम्पूर्णदेशभेदाभ्यां स च धर्मो द्विधा भवेत्।
आद्ये भेदे च निर्ग्रन्था द्वितीये गृहिणः स्थिताः ॥४॥

अर्थ : और वह रत्नत्रयात्मकधर्म सर्वदेश तथा एकदेश के भेद से दो प्रकार का है उसमें सर्वदेश धर्म का तो निर्ग्रन्थ मुनि पालन करते हैं और एकदेशधर्म का गृहस्थ (श्रावक) पालन करते हैं॥४॥

श्लोक ४ पर प्रवचन

वस्तु तो सब होती हैं, यहाँ कोई निषेध नहीं करते कि श्रावकपना नहीं होता और मुनिपना नहीं होता परन्तु होता किसे है, इसकी खबर बिना कहे, सीधा मान ले (और कहे

कि) वहाँ तो प्रतिमा का निषेध करते हैं और व्रत का निषेध करते हैं। परन्तु किस प्रकार? सुन न! भाई! ऐसा कितने ही कहते हैं (कि) ये तो प्रतिमा को मानते नहीं, व्रतों को मानते नहीं। भाई! बापू! व्रत और चारित्र यह तो महा अलौकिक धन है। यह तो शान्ति का महा अखूट खजाना है परन्तु यह होता किसे है? इसकी पहले मुख्यरूप से यहाँ तो बात चलती है; फिर सम्यग्दर्शन और ज्ञान के बाद यह वस्तु, मुनि को चारित्रदशा होती है, श्रावक को पंचम गुणस्थान के योग्य शान्ति की स्थिरता का अंश जमा हो, उसे बारह व्रत आदि श्रावक के संस्कार परिणाम होते हैं। नहीं होते, ऐसा नहीं है; बराबर होते हैं परन्तु वह श्रावक की दशा, यह प्रगट उसे होवे न? या अपने आप? अभी दर्शन की शुद्धि का पता नहीं हो, आत्मा क्या चीज है? कहाँ स्थिर होना है? कहाँ रहना है? और किस धाम में जाने से मेरी शान्ति प्रगट होगी? इस वस्तु का जिसे पता नहीं और ऐसे के ऐसे व्रत और तप और ऊपर से मान ले, वह तो अनन्त काल से मानता है, (उसमें तो) पापानुबन्धी पुण्यबन्धन होता है परन्तु मिथ्यात्व की तीव्र गाँठ गले बिना उसे व्रत और नियम सच्चे नहीं हो सकते हैं।

आचार्य कहते हैं कि यह मोक्षपद, इसका कारण जो यह पन्थ, उसे न समझे, न माने, न रमे, न करे (तो) उसका संसार दीर्घतर है अर्थात् उसका संसार अनन्त है। वह संसार छूटता नहीं। समझ में आया? इसलिए यहाँ कहते हैं कि **रत्नत्रयात्मकधर्म सर्वदेश....** यह सर्वदेश मुनि का है। निर्ग्रन्थपन्थ... ओहो! सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र की रमणता — ऐसी छठवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका; और उसकी भूमिका के प्रमाण में निर्ग्रन्थ सन्त को पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प बराबर होते हैं, होते हैं। उसमें भक्ति होती है, भगवान की पूजा का भाव होता है इत्यादि-इत्यादि उन्हें उनकी भूमिका के प्रमाण निर्ग्रन्थदशा में होता है। उनकी दशा बाह्य अत्यन्त दिगम्बर-नग्न हो जाती है।

और वह रत्नत्रयात्मकधर्म सर्वदेश.... पूर्ण, लो! यहाँ तो सर्वदेश लिया। ऐसे तो पूर्ण तो चौदहवें में हो जाता है परन्तु इस अपेक्षा से — चौथे और पाँचवें की अपेक्षा से सर्वदेश, सर्वविरति धर्म छठवें गुणस्थान में प्रगट होता है; एकदेश पंचम गुणस्थान में श्रावक की भूमिका में यह रत्नत्रय दर्शन-ज्ञान तो दोनों के समान बराबर हैं। चारित्र में दोनों में (अन्तर है) एक को एकदेश है और एक को सर्वदेश (चारित्र है) समझ में आया? चारित्र

में एक को एकदेश सम्यग्दर्शन और दूसरे को सर्वदेश सम्यग्दर्शन - ऐसा नहीं होता।

सम्यग्दर्शन तो तिर्यंच को होवे, वैसा सिद्ध को होता है। समझ में आया? यह शास्त्र में आया है। तिर्यंच को सम्यग्दर्शन है, वैसा सिद्ध को है और सिद्ध को है, वैसा इसे है। गणधर जैसी प्रतीति। चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारक गणधरदेव को जैसी आत्मप्रतीति का भान (होता है), वैसा पाँचवें गुणस्थानवाले या चौथे गुणस्थानवाले तिर्यंच-पशु को भी गणधर जैसी प्रतीति होती है। समझ में आया? गुणस्थान जहाँ अन्तरदशा प्रगटी, (वहाँ) उसकी (तिर्यंच की) प्रतीति, गणधर और उसकी (तिर्यंच की) प्रतीति में क्या अन्तर है? चारित्र की रमणता में भेद पड़ता है। एक - मुनि को-सन्त को छठे गुणस्थान में विशेष रमणता है। ओहो! तीन कषाय का नाश किया। निर्ग्रन्थ दृष्टि तो है परन्तु निर्ग्रन्थ दशा हुई है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो मुनिपना वह तो प्रथम में प्रथम उत्कृष्ट धर्म है।

पुरुषार्थसिद्धि-उपाय तो ऐसा कहता है कि सम्यग्दर्शन और ज्ञान होने के बाद पहले मुनिपने का ही उसे उपदेश देना। समझ में आया? परन्तु पहले (सम्यग्दर्शन-ज्ञान) दो होवें तो; और मुनिपना पालने की फिर उसकी ताकत और शक्ति न होवे तो कमजोरी के कारण उसे पाँचवें गुणस्थान के व्रत आदि की बात उसे प्ररूपित करे। मुनिपना न ले सके और वह सामर्थ्य न होवे तो। मुनिपना अर्थात् ऐसे बाहर से लेकर बैठे कुछ, बापू! ऐसे समाधान अन्तर में होगा कुछ? और ऐसे कुछ फल आयेगा? लो! मुनिपना लेकर बैठ गये, बाहर से नग्न (हो गये)।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर अपने परिणाम में सहनशीलता कितनी आयी है और कितनी आने की तैयारी में मेरा काम कितना होगा — ऐसा बराबर विवेक से देखकर, जानकर, उस प्रकार की व्यवहार की क्रिया में भी कहीं दखल नहीं होता और निभाव हो सके, उतना पुण्य, ऐसा संयोग और सब देखकर वह मुनिपना अंगीकार करता है। ऐसे का ऐसा मुनिपना अंगीकार नहीं करता। और श्रावक भी अपने परिणाम की योग्यता देखकर श्रावकपना अंगीकार करता है।

कहते हैं **एकदेश के भेद से दो प्रकार का है, उसमें सर्वदेश धर्म का तो निर्ग्रन्थ**

मुनि पालन करते हैं.... वीतराग, जिन्हें तीन कषाय का अभाव हुआ है, लो! इस वीतराग में भी विवाद उठा। वीतराग, वीतराग हो गये उसे यह (होता है); नीचे वीतराग नहीं होता। अरे! चौथे गुणस्थान से वीतरागदृष्टि हो, वीतराग समकित है। सम्यग्दर्शन भी वीतराग है, राग की एकतारहित, स्वभाव की एकता की प्रतीति का सम्यग्दर्शन, वह वीतरागदर्शन है और सम्यग्ज्ञान श्रुत-भावश्रुत भी वीतरागभावज्ञान है। समझ में आया? भावश्रुतज्ञान, वह भी वीतराग भावश्रुतज्ञान है और चारित्र की जितनी एकाग्रता शुद्धि (हुई), वह भी वीतरागभाव है, परन्तु इस निचली भूमिका में श्रावक को बारह व्रत का विकल्प, दान का भाव (इत्यादि) छह बोल कहेंगे, षट्कर्म। वे श्रावक को आये बिना नहीं रहते हैं। गृहस्थाश्रम में षट्कर्म, षट् कार्य हैं। **एकदेशधर्म का गृहस्थ (श्रावक) पालन करते हैं।** मुनि सर्वदेश पालन करते हैं और श्रावक एक देश, एक अंश उसकी दशा है।

श्लोक - ५

सम्प्रत्यपि प्रवर्तेत धर्मस्तेनैव वर्त्मना।
तेन ते अपि च गण्यन्ते गृहस्था धर्महेतवः ॥५॥

अर्थ : इस कलिकाल में भी उस धर्म की उसी मार्ग से अर्थात् सर्वदेश तथा एकदेश मार्ग से ही प्रवृत्ति है, इसलिए उस धर्म के कारण, गृहस्थ भी गिने जाते हैं॥५॥

श्लोक ५ पर प्रवचन

इस कलिकाल में भी उस धर्म की उसी मार्ग से अर्थात् सर्वदेश तथा एकदेश मार्ग से ही प्रवृत्ति है, इसलिए उस धर्म के कारण,.... धर्म का कारण, मुनि के धर्म का कारण और अपने गृहस्थाश्रम के धर्म का भी कारण। **गृहस्थ भी गिने जाते हैं।** कहो समझ में आया? गृहस्थाश्रम में भी मुनि को आहारदान आदि की स्थिति करते हैं और अपने भाव का धर्म भी बनाये रखते हैं; इसलिए दोनों का आधार गृहस्थाश्रम में श्रावक को कहा जाता है।

कोई किसी का आधार नहीं है न ? निमित्त के व्यवहार से इस प्रकार का विकल्प होता है; इसलिए उसे आधार गिनने में आता है।

यहाँ आगे आ गया था न ? उसमें आया था। गृहस्थ, मुनि को आहार दे, इससे शरीर टिकता है, शरीर से दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है और दर्शन-ज्ञान-चारित्र से मोक्ष होता है; इसलिए श्रावक ने मोक्ष दिया - ऐसा हम कहते हैं। ऐसा व्यवहारनय के ग्रन्थ में अधिकार आता है। इसमें ही आगे आता है। समझ में आया ? अब इसे ऐसा ही समझ ले कि हमने आहार दिया, इसलिए मोक्ष दिया। किस अपेक्षा से (कहा है) ? श्रावक को ऐसा भाव आता है कि ओहो ! इस पेट में ग्रास पड़ता है, इसकी अपेक्षा मेरे घर में सन्त -मुनि पधारें और उनके लिये एक ग्रास भी यदि पड़े तो मेरा यह दिन धन्य और सफल कहलाये।

भरत चक्रवर्ती जैसे छह खण्ड के स्वामी, सोलह हजार देव तो जिनकी सेवा में तैनात होते हैं। ऐसे भी ऐसी भिक्षा का काल हो तब अहो ! प्रभु ! धन्य मुनि ! ऊपर से कोई मुनि कहीं से आवें — ऐसा विचार करके बाहर खड़े रहें। वह तो बड़ा बंगला (होवे) चक्रवर्ती अर्थात् ? देव जिसकी सेवा करे, वे मणिरत्न के बंगले में, मणिरत्न की ऐसी चादर पहनकर सोने की जनेऊ.... ऐसे भगवान मुनि का इन्तजार करते हैं। ओहो ! ऐसा आहार का काल आया... अब कोई मुनि (पधारे...) वहाँ ऊपर से दो मुनि पधारते हैं। ऊपर से चले जा रहे मुनि नीचे उतरते हैं। ओहो ! धन्य... धन्य... ....आज ! स्वयं ऐसे लेकर (जाते हैं)। आहार के काल में ऐसा भाव गृहस्थाश्रम में धर्मी मुनि के प्रति आये बिना नहीं रहता और करते हैं ऐसा भी व्यवहारनय से कहा जाता है। ऐसा भाव वे करते हैं। मुनि के लिये उनका परिणमन है न ? परिणमन है, इसलिए करते हैं - ऐसा कहा जाता है। कर्तृत्वबुद्धि दृष्टि में नहीं है। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं। **इस कलिकाल में भी उस धर्म की उसी मार्ग से अर्थात् सर्वदेश तथा एकदेश मार्ग से ही प्रवृत्ति है, इसलिए उस धर्म के कारण, गृहस्थ भी गिने जाते हैं।** गृहस्थ भी उसमें गिनने में आते हैं। गृहस्थ और श्रावक की बहुत महिमा की है बाद के (अधिकार में)। श्रावक भी वन्द्य है - ऐसा आया है। फिर श्लोक है। समझ में आया ?

पृष्ठ २२६ यह इसमें भी श्रावक का अधिकार है। **'श्रावकाः सम्मताः'** २० वीं गाथा। श्रावक सम्मत है। **उत्तम श्रावकों का भव्यजीवों को अवश्य सादर सत्कार करना चाहिए।** है भाई? २०वीं गाथा। २१ वीं गाथा में यह है **'स बन्द्य सताम्'** वह श्रावक भी वन्द्य है, वन्द्य अर्थात् स्तुति करने योग्य है। वन्द्य शब्द पड़ा है। यह कौन सी गाथा? २१ वीं गाथा। **उन जिनमन्दिर आदि कार्यों को करता है, वह सज्जनों का वंद्य ही है.... जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा में जिनमन्दिरों में भक्तिसहित थे तथा उनको भक्तिपूर्वक बनवाते थे.... आदि कार्यों को करता है, वह सज्जनों का वंद्य ही है अर्थात् समस्त उत्तमपुरुष उसकी निर्मल हृदय से स्तुति करते हैं।** वन्द्य का अर्थ स्तुति करते हैं। समझ में आया? ऐसे श्रावक स्वयं जिनमन्दिर बनावे, प्रतिमा स्थापित करे, मन्दिर बनावे। बनावे अर्थात् इस व्यवहार में तो ऐसा ही आवे न? बाकी तो होना हो, तब होता है। उसका विकल्प निमित्त कहने में आता है परन्तु बनाता है, उसे कहते हैं कि धन्य है, उस श्रावक को वन्द्य कहते हैं। पद्मनन्दि आचार्य, पंचम गुणस्थानवाले श्रावक को भी कहते हैं कि स्तुति करने योग्य है। तू भी स्तुति और स्तवन करने योग्य है, प्रशंसा करने योग्य है। धन्य तेरा धर्म कि इस प्रकार से तू तेरा उद्धार करता है और सच्चे धर्म के निमित्त में, निमित्तपने तू होता है। कहो समझ में आया? छठवाँ श्लोक

श्लोक - ६

सम्प्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः।
धर्मश्च दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम्॥६॥

अर्थ : और इस काल में श्रावकगण बड़े-बड़े जिनमन्दिर बनवाते हैं तथा आहार देकर मुनियों के शरीर की स्थिति करते हैं तथा सर्वदेश और एकदेशरूप धर्म की प्रवृत्ति करते हैं और दान देते हैं, इसलिए इन सभी के मूल कारण श्रावक ही है। अतः श्रावकधर्म भी अत्यन्त उत्कृष्ट है॥६॥

श्लोक ६ पर प्रवचन

मुनि और गृहस्थाश्रम के धर्म को श्रावक मूल कारण है - ऐसा कहते हैं। **और इस काल में श्रावकगण बड़े-बड़े जिनमन्दिर बनवाते हैं...** है न? **जिनगेहे** मन्दिर बनावे, प्रतिमा स्थापित करे, वह उसका पुण्यभाव है, वह उसका शुभभाव है, अशुभ से वंचनार्थ, अशुभ को टालने — ऐसा व्यवहार से कहने में आता है और शुभ के भाव को वहाँ वह करता है। भगवान की पूजा (करता है), मन्दिर बनाता है। समझ में आया? बहुत-बहुत पहले में आया है न फिर? सर्वज्ञ के कथित शास्त्रों का व्याख्यान करता है। समझ में आया? और वे पुस्तकें प्रकाशित करता है। यह कुछ है अवश्य अन्दर। कौन से श्लोक में होगा? श्लोक, ज्ञानदान की महिमा। श्रावक की बात चलती है, हों! वह श्रावक

ज्ञानदान की महिमा का वर्णन।

व्याख्या पुस्तकदानमुन्नतधियां पाठाय भव्यात्मनां
भक्त्या यत्क्रियते श्रुताश्रयमिदं दानं तदाहुर्बुधाः।
सिद्धे ऽस्मिन् जननान्तरेषु कतिषु त्रैलोक्यलोकोत्सव
श्रीकारिप्रकटीकृताखिलजगत्कैवल्यभाजोजनाः ॥१०॥

सर्वज्ञदेव से कहे हुए शास्त्र का भक्तिपूर्वक जो व्याख्यान किया जाता है... भक्तिपूर्वक शब्द पड़ा है, हों! दुनिया के मान के लिये, पूजा के लिये नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी, उसका भाव जिसे अन्तर में बैठा है, वह (उसका व्याख्यान करता है)। यह बाद के अधिकार में है, दूसरा अधिकार है न? इसके बाद का अधिकार है, उसकी दसवीं गाथा (देशव्रत-उद्योतन अधिकार)।

तथा विशाल बुद्धिवाले भव्यजीवों को पढ़ने के लिए जो पुस्तक दी जाती हैं.... है न? '**मुन्नतधियां पाठाय भव्यात्मनां**' इसकी बुद्धि अच्छी है, इसके ख्याल में है या इसे पुस्तक आदि शास्त्र देने से इसका ज्ञान सम्यक् भलीभाँति होगा — ऐसे जीवों को **पढ़ने के लिए जो पुस्तक दी जाती हैं, उसको ज्ञानी पुरुष शास्त्र (ज्ञान) दान कहते हैं तथा भव्यों को इस ज्ञानदान की प्राप्ति के होने पर थोड़े ही भवों में,....** सम्यग्दर्शन, ज्ञान के भानसहित है न? इसलिए दान करनेवाला ऐसे शास्त्र का, पुस्तक का व्याख्यान करनेवाला

वह थोड़े भव में **तीनों लोक के जीवों को उत्सव तथा लक्ष्मी के करनेवाले और समस्त लोक के पदार्थों को हाथ की रेखा के समान देखनेवाले, केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है।** बात तो है स्वरूप की एकाग्रता की घोटन में। यह विकल्प आया है शास्त्र आदि का भी, इसमें से जितनी वैराग्यता अन्दर में रमती है, उसके कारण अल्प काल में वह मोक्ष जायेगा - ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

व्यवहार की बात ऐसी है कि, कथन इसका व्यभिचार है — अन्यथा कथन करे परन्तु इसका अर्थ ऐसा लेना। अहो! इसे ज्ञानस्वभाव रुचा है न! इसलिए दूसरे को ज्ञान देना, दूसरे समझें ऐसा करे, शास्त्र बनाऊँ, शास्त्र रचूँ, शास्त्र दूसरे को दूँ — ऐसा ज्ञान का राग रहितपना जितना घूँटता है, वह वास्तविक ज्ञान का दान है और राग आया वह व्यवहार दान है, उसमें पुण्य बन्धन होता है, वह पुण्य-बन्धन भी व्यवहार से मोक्ष का निमित्तकारण कहने में आता है। समझ में आया?

जो धर्मात्मा श्रावक, शास्त्र का व्याख्यान करते हैं.... देखो! यहाँ श्रावक की बात की है। **जो धर्मात्मा श्रावक शास्त्र का व्याख्यान करते हैं तथा पुस्तक लिखकर तथा लिखवाकर देते हैं और पढ़ना-पढ़ाना इत्यादि ज्ञानदान में प्रवृत्त होते हैं। उन श्रावकों को थोड़े ही काल में समस्त लोकालोक को प्रकाश करनेवाले केवलज्ञान की प्राप्ति होती है....** उस श्रावक को थोड़े काल में केवलज्ञान होता है। **अपने हित के चाहनेवाले भव्यजीवों को यह उत्तम ज्ञानदान अवश्य ही करना चाहिए।** आचार्य तो जंगल में रहकर करुणा से जिसकी-जिसकी जितनी हद की मर्यादा है, उतनी सब बात की है। उसे पुण्य का भाव, अनुमोदन का भाव, प्रशंसा का भाव होता है।

सभी दान में ज्ञानदान श्रेष्ठ है। समझ में आया? अभयदान, औषधदान, अन्नदान, ज्ञानदान — इन चार में ज्ञानदान जन्म-मरण के नाश का कारण है। कहो, समझ में आया? इसे ज्ञान के स्वभाव की भक्ति अन्दर में जगी है। इससे इस ज्ञान में इस प्रकार का अनुमोदन और सम्मत होता है। यह भाव जितना अन्दर शुद्ध हुआ, वह शुद्धता आगे बढ़कर केवलज्ञान ही पायेगा। उसे केवलज्ञान के सिवाय दूसरी दशा होगी नहीं। स्वर्ग में एकाध भव करेगा यह लिखा, कहा या नहीं - यह सब?

मुमुक्षु : ....

उत्तर : .....श्रावक का अधिकार है। देशव्रत-उद्योतन का यह पूरा अधिकार है। श्रावक का ही यह अधिकार है। २७ गाथा है। अपने आ गयी है, पहला अधिकार आ गया है। यह दस वर्ष में पढ़ा जाता है (संवत्) २००६ की साल में यह अधिकार पढ़ा था और अभी दूसरी कोई स्थिति आदि का... और लोक फिर वापस ऐसा कहते है कि व्यवहार कहते हैं या नहीं? भाई! सब व्यवहार है वहाँ। समझ में आया? श्रावक के व्रत की बात करते नहीं, मुनि के व्रत की बात करते नहीं, अमुक करते नहीं... परन्तु सुन न! प्रभु!

दर्शन-ज्ञान होने के बाद ऐसे व्रत और मुनि के चारित्र आदि हो सकते हैं, इसलिए पहला वजन दर्शन का दिया जाता है और उसका ही अधिक बारम्बार भाव कहने में, घोलन में आता है क्योंकि उसका मूल सुरक्षित किये बिना आगे करने जायेगा तो सब व्यर्थ का व्यर्थ होगा परन्तु दर्शन और ज्ञान की शुद्धिपूर्वक, श्रावक को बारह व्रत, दान, भक्ति, पूजा इत्यादि हुए बिना नहीं रहते। प्रतिमा बनावे, मन्दिर बनावे, प्रभावना करे, रथयात्रा निकाले — सब होता है परन्तु उसकी मर्यादा में ज्ञानी की दृष्टि होती है, वे कार्य तो वहाँ होने हैं, मेरा राग मात्र निमित्त कहने में आता है और वह राग मेरा इसकी ओर निमित्त है और उसकी ओर भी निमित्त है, क्या कहा? यह राग, बाहर होने की क्रिया थी, उसमें निमित्त हुआ और मेरे स्वभाव की स्थिरता करूँ, उसमें भी यह राग निमित्त है। समझ में आया? ऐसा सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी अपने आत्मा में इस प्रकार नजर डालता और रहता है। उस सहित की यह सब बात है। यह मूल बात भूलकर दूसरी बात होवे (तो वह) **मूलं नास्ति कुतोः शाखा** जिसका मूल नहीं उसकी शाखा है। समझ में आया?

और कहते हैं, इस काल में, कहा न? **बड़े-बड़े जिनमन्दिर बनवाते हैं....** लो! यह बड़े-बड़े, अर्थ में है, हों! **जिनगेहे** है न? यह जिनघर बनावे, परमात्मा मन्दिर बनावे, लोगों को भी ऐसा (होवे) आहा! अपने लिये कैसा घर / मकान नहीं बनवाता? दो लाख और पाँच लाख का अच्छे में अच्छा बनाता है। ऐसा रंग और ऐसी कारीगरी और अमुक करके... यहाँ तक कमर तक अमुक और क्या तुम्हारे आता है न कुछ? कन्दोरा कमर तक

अमुक प्रकार की पत्थर क्या ? लादी नहीं, टाईल्स, टाईल्स, यहाँ तक, डिजाईन यहाँ तक फिर ऐसे डालना, ऊपर ऐसे डालना, चारों ओर ऐसे डालना, सब मन्दिर की शोभा का विकल्प आता है या नहीं घर का ? मन्दिर अर्थात् वहाँ घर।

इसी प्रकार भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा स्थापना निक्षेप से जहाँ विराजे, यह आगम तो उसे कहता है कि 'जिनप्रतिमा जिनसारखी'। **जिनप्रतिमा जिनसारखी कही आगम माहीं।** आगम में प्रतिमा को मानो साक्षात् भगवान विराजते हों — ऐसा उसे प्रेम आता है। संसार में कैसा प्रेम आता है ! स्त्री का जहाँ ऐसा फोटो देखे, वहाँ ऐसा गलगलिया अन्दर हो जाये। याद करे वहाँ गलगलिया हो।

एक बार बात की थी न ? किसी की स्त्री मर गयी, पोरबन्दर में, जवान थी। नाम नहीं (देते हैं) वहाँ फिर हम देखने गये, उसके निवास पर.... यह किसका फोटो है ? कहा, पुरानी स्त्री मर गयी उसका। फोटो देखो तो बड़ा ऐसा। पुरानी स्त्री मर गयी उसका फोटो, मुख देखकर प्रसन्न होता है, तो तीन लोक के नाथ चैतन्य परमात्मा जिनबिम्ब वीतरागी चैतन्यबिम्ब है, ऐसे बिम्ब को श्रावक बनावे और पूजा-भक्ति करे वह इसमें आये बिना रहता नहीं। यह बाहर आता है न ? वे कहते हैं व्यवहार का निषेध करते हैं। सुन न ! बापू ! परन्तु होवे उसका निषेध करते हैं दृष्टि में या न हो उसका ? उसके भाव में आता है। भगवान की महापूजा (करे)। शास्त्र में चार प्रकार की पूजा है। देव, इन्द्र पूजा करे, चक्रवर्ती करे, बड़े सेठ करे, और साधारण (नहीं), ऐसी बड़ी पूजा की अरबों रुपये का खर्च करे। एक-एक दिन के अरबों रुपये का खर्च ! भक्ति का उल्लास आवे और जितनी उनकी ऋद्धियाँ (होवें), उसके प्रमाण में करे। ऐसे दो पाठ आते हैं, बाद में आते हैं, इसमें भी आते हैं। जैसी इसकी ऋद्धि हो, उसके प्रमाण में करे। ऐसा उसका राग घटे और दान का भाव पूजा का भाव उसे आये बिना नहीं रहता और शक्तिप्रमाण न करे, तो इसमें आया है, दान अधिकार में आया है कि धर्मात्मा नाम धरावे और धर्म के कार्य में दान आदि राग न घटावे और पुण्य के कार्य ऐसे न करे (तो) मायाचारी है। मायाचारी... नाम धराना धर्मात्मा का और धर्म के प्रसंग में कोई लक्ष्मी-दान आदि करने का प्रसंग (आवे तो ऐसा कहे), यह हमारा काम नहीं, यह हमारा काम नहीं। लड़के का विवाह करना हो तो पचास हजार, लाख खर्च कर डालना... भाई ! तेरी प्रीति की दिशा बदली नहीं, हों !

जिसे धर्म की प्रीति की दिशा / दशा है, उसे धर्म के साधनों में भी ऐसा प्रीति का भाव आये बिना नहीं रहता है।

तथा **जिनगेहे मुनिस्थितिः** इसके दो अर्थ किये हैं। उसमें दूसरा आता है, वह तो जिनगृह धर्म बनावे वहाँ मुनि आकर रहें, यह यहाँ अभी बात नहीं है। **आहार देकर मुनियों के शरीर की स्थिति करते हैं....** ऐसी बात है। गृहस्थाश्रम में श्रावक, जिसे धर्म रुचा है, वह धर्मी को देखकर धर्मात्मा के प्रति प्रेम आये बिना नहीं रहता। कहा है न? रत्नकरण्डश्रावकाचार में, 'न धर्मी धार्मिके विना' धर्म कहीं धार्मिक जीव के बिना होता नहीं है, अतः जिसे धर्म का प्रेम है, उसे धार्मिक जीव के प्रति प्रेम आये बिना नहीं रहता और यदि प्रेम नहीं... यह तो अपने आ गया इसमें, नहीं? अष्टपाहुड़ में। जिसे धर्म के प्रति प्रेम है, उसे धर्मी ज्ञानी के प्रति प्रेम है। इसे ज्ञानी के प्रति प्रेम न हो तो इसे धर्म के प्रति प्रेम है नहीं। ऐसा भाव, संसार में धर्मी को आये बिना नहीं रहता है।

यहाँ कहते हैं कि गृहस्थ **जिनमन्दिर बनवाते हैं...** यहाँ विवाद करते हैं कि लो! बनाते हैं न? बना सकते हैं न व्यवहार से? अरे प्रभु! सुन न बापू! व्यवहार के वचन ऐसे हैं। बनाते हैं इसका अर्थ — ऐसा भाव हुआ न, कि मुझे जिनमन्दिर बनाना है, इसलिए बनाते हैं — ऐसा कहने में आता है। वहाँ तो एक-एक रजकण की पर्याय उस काल में क्रम में आनेवाली, होनेवाली हो वह होती है। समझ में आया? परन्तु इसका भाव था। अहो! जिनमन्दिर हों, लोग देव-दर्शन करे और इस प्रकार भक्ति का लाभ हो — ऐसा इसका भाव था, वह बनाता है (- ऐसा कहा जाता है)। निमित्त हो, इसलिए बनाता है — ऐसा कहा जाता है।

आहार देकर मुनियों के शरीर की स्थिति करते हैं.... लो! शरीर का फिर आहार से स्थिति नहीं... उन उपादान-निमित्त में आया है — दोहा में आया है या नहीं? वह कहता है, भाई! निमित्त, निमित्त बिना, आहार किये बिना कोई झीका है? वह निमित्त कहता है। आहार-पानी लिये बिना तुम उपादान-उपादान किया करते हो परन्तु आहार लिये बिना कोई जीता है? वह उपादान कहता है चल भाई! चल; आहार करते हुए भी मर जाता है, उसकी स्थिति आहार के कारण रहती है? समझ में आया? वह तो आयुष्य हो उस प्रमाण रहती है परन्तु निमित्त के कथन ऐसे हैं कि उसकी स्थिति की हद न जाने तो निमित्त का,

उपादान का घोटाला (करे), बड़ा घोटाला करके वास्तविक तत्त्व की भूल खाये।

कहा न? .....वीतरागमार्ग के पंथ को यदि तुझे प्रवर्ताना हो तो निश्चय और व्यवहार दोनों को चूकना नहीं अर्थात् निश्चय तत्त्व है, उसका आश्रय चूकना नहीं और व्यवहार के भंग जिस-जिस गुणस्थान में दया, दान या गुणस्थान की श्रेणी है, उसे स्वीकार करना कि यह है। व्यवहारमार्ग है, तीर्थ है, गुणस्थान है, गुणस्थान की श्रेणी की शुद्धता के भंग भी हैं। यदि यह नहीं माने तो तीर्थ उड़ जाता है और निश्चय नहीं माने तो आश्रय किये बिना धर्म कहाँ से आयेगा? समझ में आया? इसमें अर्थ के घोटाले! इतनी बात कोई विसंवाद में पड़ गयी है।

यहाँ कहे — **बनवाते हैं...** लो! भाई! **स्थिति करते हैं... मुनियों के शरीर की स्थिति करते हैं....** इसका भाव क्या है? कि अहो! उनके सम्बन्ध में निमित्तरूप से शरीर है और शरीर के निर्वाह में आहार-पानी है — ऐसी इस विकल्प की स्थिति को गिनकर श्रावक, मुनि की शरीर की स्थिति रखता है - ऐसा कहा जाता है। यह पद्मनन्दि आचार्य-सन्त भावलिंगी मुनि हैं, वनवास में रहते थे और २६ अधिकार, ऐसे भगवान के साथ बातें करके बनाये हैं। आहाहा! जैसे कुन्दकुन्दाचार्य, वैसे पद्मनन्दि आचार्य जंगल में रहनेवाले हैं, वे कहते हैं कि भाई! यह तो पहले इसमें आ जाता है। जैसी गाथा समयसार की है न **ववहारोऽभूदत्थो** यही गाथा इसमें है। यही गाथा इसमें है। कुन्दकुन्दाचार्य के बहुत-बहुत भावों की गाथा में से बीज बहुत-बहुत ग्रन्थों में आते हैं। व्यवहार, वह अभूतार्थ है, निश्चय से अपना स्वरूप निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति, वह एक ही धर्म है; दूसरा कोई धर्म नहीं। वह आ जाता है, धर्मामृत है न? उसमें यह आता है। यहाँ कहते हैं। **मुनियों के शरीर की स्थिति करते हैं तथा सर्वदेश और एकदेशरूप धर्म की प्रवृत्ति करते हैं....** श्रावक, मुनि की व्यवहारधर्म की प्रवृत्ति को भी मदद दे, स्वयं भी एकदेश धर्म की प्रवृत्ति करते हैं। **दान देते हैं... धर्मश्च दानं** है न? दान दे। मुनि को दान, आहार-पानी का दान, अभयदान, औषधदान इत्यादि। ज्ञानदान, वह दान का भाव भी श्रावक को शुभभाव बराबर आता है। पुण्यभावसहित यह पुण्यानुबन्धी पुण्य है। दर्शनशुद्धि में राग का निषेध वर्तता होने पर भी, ऐसी भूमिका का भाग आये बिना (रहता नहीं)। इससे वह पुण्यानुबन्धी पुण्य बाँधता है। ये पुण्य भविष्य में अनुकूल सामग्री मिलने में निमित्त होंगे। अन्दर की स्वरूप

की रमणता में जितनी शुद्धता प्रगट हुई है, वह साधन होगी। समझ में आया? दोनों बातें हैं। एक बात आदरणीय है और एक है, वह व्यवहार से जाननेयोग्य। आदरने योग्य का अर्थ कि है ऐसा उसे बराबर जानना और स्वीकार करना चाहिए। कहो, समझ में आया?

'**जिनगेहे मुनिस्थितिः धर्मश्च दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम्**' मुनि को घर में कहाँ दान देने की स्थिति का प्रसंग है, यह तो श्रावक को ही होता है। यह दान, दया, भक्ति, पूजा, मन्दिर, इस स्थिति में मूल कारण तो (श्रावक है)। लो! '**श्रावका मूलकारणम्**' अब कारण-कार्य का विवाद करे तो यहाँ विवाद उठे। किस अपेक्षा से बात चलती है? सबका मूल कारण तो द्रव्य जो है, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का मूल कारण द्रव्य है और उसमें राग का प्रेम और भक्ति, दान आदि आवे वह व्यवहार कारण, उपचार कारण कहे जाते हैं।

यहाँ कहते हैं कि मुनि और जिनप्रतिमा, मन्दिर और मुनि की स्थिति और दान देने का मूल कारण तो श्रावक है। उसका मूल कारण है, उसका अर्थ कि मुनि में वह कारण है नहीं। इसकी अपेक्षा इस श्रावक को मूल कारण कहा गया है। सबेरे दूसरी बात चलती है और यह दूसरी बात है - ऐसा नहीं, हों! दोनों की मेलवाली है। सबेरे की वहाँ बात आवे परन्तु इस बात के साथ वह सन्धि है। स्वभाव के आश्रय से दर्शन-ज्ञान और चारित्र का जितना अंश प्रगट हुआ, वही वस्तु की स्थिति है, वह परमार्थ धर्म है, वही मोक्षमार्ग है परन्तु उसमें ऐसा व्यवहार मोक्षमार्ग का पुण्य-बन्ध का भाव आये बिना नहीं रहता। आये बिना रहे तो वीतराग हो जाये और या हो जाये अज्ञानी। साधक है, साधक है न? तो अन्दर बाधकपना ऐसा व्यवहार राग उस प्रकार का ही उसे आता है। स्त्री, पुत्र को पोषण का भाव है, उसकी अपेक्षा मुनि को और प्रतिमा आदि को पोषण का बहुत भाव होता है। कहो, समझ में आया?

इसलिए इन सभी के मूल कारण श्रावक ही है। अतः श्रावकधर्म भी अत्यन्त उत्कृष्ट है। है न? इसलिए श्रावकधर्म बड़ा उत्कृष्ट कहा गया है — ऐसे गिनो तो कहीं चौथे की अपेक्षा अच्छा परन्तु छठे की अपेक्षा? इसकी अपेक्षा लेने चाहिए न? यहाँ कहते हैं कि अत्यन्त उत्कृष्ट है। किसकी अपेक्षा से? छठे की अपेक्षा से? मुनि की अपेक्षा से? कि नहीं... नहीं; वह चौथे (गुणस्थान) की अपेक्षा पाँचवें में उस प्रकार की भूमिका है,

इसलिए उसे अत्यन्त उत्कृष्ट कहा गया है। वहाँ निन्दा की जाती है कि यह हल्का है, यह किसी ऊँचे की अपेक्षा से, यह अच्छा कहे तो नीचे की अपेक्षा से — ऐसा समझे बिना इसका अर्थ करे तो वह अर्थ यथावत् नहीं होगा।

श्लोक - ७

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने ॥७॥

अर्थ : जिनेन्द्रदेव की पूजा और निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा तथा स्वाध्याय और संयम तथा योग्यतानुसार तप और दान ये छह(षट्) कर्म श्रावकों को प्रतिदिन करने योग्य हैं ॥७॥

श्लोक ७ पर प्रवचन

अब आया लो! श्रावक के छह कर्तव्य आये। **षट् आवश्यक कर्म** समझ में आया? नियमसार में तो जहाँ आवश्यक कर्म कहने में आया, वहाँ तो निश्चय-अवश्य कर्तव्ययोग्य निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और रमणता को वहाँ आवश्यक कर्म कहते हैं। समझ में आया? वहाँ तो शुभभाव को भी पराधीन दशा कहकर, वह आवश्यक कर्म कहने में नहीं आता। निश्चय से तो ऐसा है। समझ में आया?

परन्तु यह श्रावक भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एक अंश - चारित्र भी आराधता है, यह भी रत्नत्रय को ही आराधता है। इसे इसके प्रमाण में ग्यारह प्रतिमाएँ अथवा बारह व्रत आदि भाव आते हैं। ऐसे श्रावक के कर्तव्य को-षट्कर्म को व्यवहार से आवश्यक कर्म करने योग्य है - ऐसा कहने में आता है। व्यवहार से अवश्य कर्म करनेयोग्य है — ऐसा (कहने में आता है।) निश्चय से वहाँ नियमसार में ऐसा कहते हैं कि आवश्यक कर्म अर्थात् जिसमें पराधीनपना न हो, उसे आवश्यक कर्म कहते हैं। राग, वह पराधीन है परन्तु

व्यवहार से अशुभ से बचने और उस भूमिका के शुभभाव को अवश्य करने योग्य है — ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ?

'दिने दिने' जिनेन्द्रदेव की पूजा... गृहस्थाश्रम में हमेशा श्रावक को भगवान के दर्शन और पूजा होते हैं। **'दिने दिने'** इसमें तो क्रम नहीं रहा - ऐसा कोई कहे। अरे! सुन, प्रभु! इन व्यवहार के वचनों में इस श्रावक के धर्म में ऐसा भाव उसके क्रम में आये बिना नहीं रहता। है न आगे एक जगह ? सबेरे उठकर देव-गुरु का दर्शन करना, तत्पश्चात् दूसरे काम करना - ऐसा मुनि कहते हैं। दूसरे काम करने को मुनि कहते हैं ? पद्मनन्दि में पाठ तो ऐसा है। जल्दी सबेरे उठकर देव-अरिहन्त के दर्शन करना, गुरु के दर्शन करना, फिर शास्त्र को सुनना। फिर दूसरे काम करना, व्यापार-धन्धा करना - ऐसा है - प्रातः उठे, आवे न ? व्यवहार के कथन नहीं आते ? यह तो उन तीव्र पाप के कर्तव्य करने से पहले यह तेरे आवश्यक हैं - ऐसा बतलाते हैं। यह पापकर्म करना और तुझे आदेश देते हैं - ऐसा नहीं है। अपेक्षा समझे बिना शैली ले तो वह तो विवाद तो अनादि से चला आता है।

कहो, **जिनेन्द्रदेव की पूजा...** भगवान के दर्शन हमेशा करना चाहिए। वे कहते हैं कि यह तो प्रतिमा है। अभी तो यह पंचम काल की बात है, यहाँ कोई साक्षात् भगवान नहीं विराजते; यह तो प्रतिमा के दर्शन की बात चलती है। प्रतिमा की पूजा, उसके दर्शन हमेशा श्रावक प्रतिदिन करे। कहो, समझ में आया ? देखो! आता है या नहीं यह ? परन्तु वहाँ तो... इसके आगे एक गाथा में है। जिस देश में, जिस काल में, जो धन सम्यग्दर्शन को नुकसान करे, उस देश को छोड़ देना, यहाँ इसमें आता है। भाई! इस पाठ में आता है, सब गाथायें कहीं याद होती हैं ? समझ में आता है न ? यह आता है, इसमें आता है, हों! पद्मनन्दि में। है कुछ याद ? कौन जाने याद किस प्रकार रहे ? सब कहीं याद रहे ? पाठ है। यहाँ बीच में गाथा है, इसमें तो नहीं होगी परन्तु.. समझ में आया ? वह इसी में है, लो! यह पृष्ठ फिराया वहाँ निकला, कहाँ होगा कौन जाने - कहा यह... यह तुम्हारा उत्तर निकला एकदम। देखो, २६ वीं गाथा! कौन जाने कहाँ होगी ? कहा, इसकी २६ वीं गाथा, अपने चलता है इसकी। २०२ पृष्ठ, २०२ पृष्ठ, २६ वीं गाथा।

तं देशं तं नरं तत्स्वं तत्कर्माणि च नाश्रयेत्।
मलिनं दर्शनं येन येन च व्रतखण्डनम्॥२६॥

सम्यग्दृष्टि श्रावक... है ? **ऐसे देश को...** ऐसे देश में जहाँ भगवान का संग नहीं, जहाँ प्रतिमा के दर्शन नहीं, जहाँ सत् श्रवण का प्रसंग नहीं। **ऐसे पुरुष को...** ऐसे पुरुष को छोड़ दे। जो पुरुष पूरे दिन विपरीतता की प्ररूपणा करता हो और बातें करता हो और कुसंग, पुरुष को छोड़ दे। **और ऐसे धन को...** छोड़ दे। जिस धन में यह धन, यह और यह ऐसा नुकसान हो जाये, श्रद्धा की दिक्कत आवे, उस धन का भी लक्ष्य छोड़ दे। **तथा ऐसी क्रिया को कदापि आश्रय नहीं करते जहाँ पर उनका सम्यग्दर्शन मलिन होवे तथा व्रतों का खंडन होवे।** यह काम न ले, ऐसी है, भाई! बात तो। गाँव छोड़ दे। कमाने के लिये देश छोड़कर परदेश में नहीं जाता ? कमाने के लिये जाता है या नहीं ? कुचामन से वहाँ किशनगढ़ कमाने के लिये जाता है या नहीं ? देश बदलकर दूसरे देश में।

ऐसा कहते हैं कि अपनी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति आदि सुरक्षित नहीं रहे और निमित्त ऐसे बहुत प्रतिकूल हों तो उनमें इसे छोड़ देना। उपदेश का क्या वाक्य आये ? समझ में आया ? ऐसे कुसंग और कुदेश में इसे रहना नहीं। तुमने पूछा उसका उत्तर दिया, भाई! ठीक है न ? वहाँ सिरपच्ची में कुछ नहीं मिले और वहाँ रहना... कहो समझ में आया ? यह इसी में है, हों! यह अधिकार है न ? इसी का अधिकार है, यह तप की व्याख्या में है, यह छह बोल आयेंगे न ? उनका विस्तार करते हैं।

जिनेन्द्रदेव की पूजा.... सच्चे वीतरागमार्ग की। वीतरागबिम्ब है, उसके दर्शन ऐसा भाव गृहस्थदशा में श्रावक को आये बिना नहीं रहता। उसकी मर्यादा जानता है, हों! उसे पुण्यबन्ध का कारण जाने। उसे व्यवहारधर्म जाने, उसे व्यवहारधर्म जाने; परमार्थ धर्म तो रागरहित जितनी मेरी दशा, वह मेरा परमार्थ धर्म है। समझ में आया ? **और निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा....** लो! महानिर्ग्रन्थ चारित्रवन्त सन्त वीतरागी, जिन्हें वीतरागता का घोलन चलता है, अल्प काल में केवलज्ञान लेने की तैयारी है — ऐसे **निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा....** दृष्टि में निर्ग्रन्थता और स्थिरता में निर्ग्रन्थता प्रगटी है—ऐसे सन्तों की सेवा, वह गृहस्थ श्रावक का प्रतिदिन का कर्तव्य है। कर्तव्य, व्यवहार से कर्तव्य ही कहलाता है। समझ में

आया ? वह करनेयोग्य है — ऐसा व्यवहार से कहलाता है। व्यवहार और निश्चय के बड़े झगड़े, बापू! व्यवहार की मर्यादा होती है। ऐसे व्यवहार की बातें आये बिना नहीं रहतीं।

तीसरी बात, **स्वाध्याय...** दो के अर्थ करेंगे, हों! स्वाध्याय, श्रावकों को हमेशा शास्त्र का स्वाध्याय (करना)। यह कितने ही यहाँ आते हैं, एक पृष्ठ फिरा जाते हैं, दो लाईन, दस लाईन (पढ़ लें) वह स्वाध्याय नहीं। स्वाध्याय तो बराबर शान्ति से घड़ी, दो घड़ी शास्त्र स्वाध्याय हर रोज करे। शास्त्र का स्वाध्याय हर रोज करे। एक दिन किया और फिर महीने तक कुछ नहीं (- ऐसा नहीं)। समझ में आया ? आज पूजा के लिये आये थे, कहलवाया है, भाई! कहना कि मैं आज पूजा करने आया हूँ, वहाँ गये थे न ये सब ?

यहाँ तो कहते हैं कि बापू! जिसे श्रद्धा-ज्ञान और जिसे भगवान का प्रेम है, उसे भगवान की पूजा, वाणी का स्वाध्याय हमेशा (होते हैं)। बहियाँ देखता है या नहीं सबेरे-शाम ? शाम को देखता होगा। बहिया देखता है या नहीं ? खतौनी कितनी और यह आया कितना तथा गया कितना और खपाया कितना और लिखा कितना। इसमें शेयर बाजार में तो तुम्हारे ऐसी धमाल चलती होती है। कहते हैं कि प्रतिदिन कुछ स्वाध्याय होती है तुझे ? वीतराग की वाणी के शास्त्र, हों! वीतरागवाणी जिसमें निकलती हो। जिसमें वीतराग का बोध शब्द-शब्द में न्याय-न्याय से निकलता हो — ऐसे वीतराग के शास्त्र का स्वाध्याय गृहस्थाश्रम में हमेशा करे। प्रतिदिन स्वाध्याय करे तो इसका श्रावकपना यथार्थ बना रहे और व्यवहार इसका स्वाध्याय का आवे। ऐसा न माने, न आवे तो इसकी दृष्टि खोटी और वस्तु का पता है नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)